# पाँव
# कटे
# बिम्ब

•

कुमार नयन

**PAW KATE BIMB**
*By* KUMAR NAYAN
*1993, Rs. 60/-*

प्रथम संस्करण : 1993 
आवरण : जगत शर्मा

मूल्य : 60 रुपये

*Publisher :*
**SAPEKSH PRAKASHAN**
65, SATBARI
MAHRAULI, DELHI-30

पुस्तक प्राप्त करने का अन्य स्थान
**कुमार नयन**
हनुमान फाटक
बक्सर, बिहार

मुद्रक :
कल्पना प्रेस
रामकटोरा रोड,
वाराणसी

## समर्पण :—

जननायक शहीद ज्योति प्रकाश को, जिन्होंने दुबके, सहमे और ठिठके हुए लोगों को मुक्ति-संघर्ष का अपराजेय योद्धा बनाकर अपनी शहादत के लहू से क्रान्ति के इतिहास में एक अमिट लीक खींच डाली।

# पाँव कटे बिम्ब

कुमार नयन की कविताओं से पहली मुलाकात हुई डुमरांव में प्रगतिशील लेखक संघ के एक आयोजन में। आपात्काल के उस घुटन भरे माहौल में अनुभव की ताजगी, भाषा की तल्खी और स्वर की आक्रामकता ने मुस्कुराने का आधार दिया। श्रोता के रूप में बैठे हजारों आम लोगों ने कविता की इस भूमिका को महसूस किया था। अवश्य ही, जब जीवन में घुटन भरने वाले पर चोट की जा रही हो, तो उन्मुक्त जीवन चाहने वाले को मुस्कुराने का सहारा मिलता है। बेशक यह प्रगतिशील कविता की एक खास पहचान है।

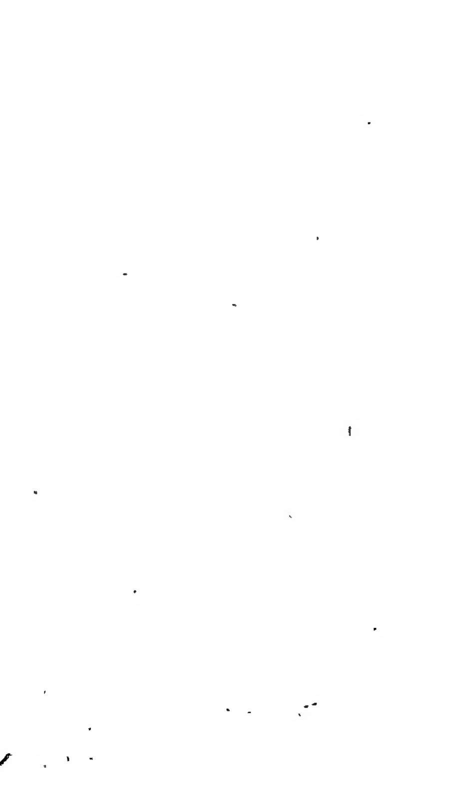
कुमार नयन के अनुभवों का भण्डार पिछले वर्षों में और समृद्ध हुआ है, उसकी भाषा की तल्खी और स्वर की आक्रामकता बढ़ती ही गई है, साथ ही प्रौढ़ता और गम्भीरता भी। आज के जीवन की असंगतियों को कवि बेपर्द करता है, घिनौने आडम्बरों को उघार देता है, उनकी भयानकता के सामने बेखौफ खड़ा हो जाता है। इस तरह कवि आज की अर्थहीनता को अर्थ देने की और दिशाहीनता को दिशा बताने की कोशिश करता है। उसका यह प्रयत्न इतिहास-बोध से सम्पन्न होने के कारण बड़ा बन जाता है।

कुमार नयन की कविताओं में संवेदना भी है और चिंतन भी और ये दोनों संघर्षशीलता के ताप में घुलकर एक हो जाते हैं। यही सब उसे अतिवाद से बचाते हैं; यों मनुष्यता पर हो रहे दानवी हमलों की प्रतिक्रिया अतिवादी बनने को उकसाते तो आश्चर्य क्या !

लेकिन यह कवि नफरत करता है अत्याचारियों से, जुल्मियों से, उनसे नहीं जो अत्याचार के डर से घरों में दुबके हुए हैं। उसकी कोशिश है कि वे दुबके हुए आदमी हिम्मत करके बाहर निकलें। लेकिन इसके लिए वह न तो फरमान जारी करता है और न नारे लगाता है। वह वातावरण के सन्नाटे को तोड़ने के लिए कवि के रूप में मजबूती से कलम उठाकर लिखता है—"सृजन की आत्मा जिन्दाबाद !"

—डा० खगेन्द्र ठाकुर

# पाँव कटे बिम्ब



# पाँव कटे बिम्ब

घिसटते हैं मूल्य
बैसाखियों के सहारे
पुराने का टूटना
नये का बनना
दीखता है—सिर्फ डाक टिकटों पर

लोकतंत्र की परिभाषा
क्या मोहताज होती है
लोक जीवन के उजास हरफों का ?
तो फिर क्यों दीखते हैं
स्वस्थ सुगठित शब्दों से बने
मूल्यों के पाँव कटे बिम्ब ?

नये मूल्यों के प्रतीक हैं
महज कुछ उभरे पेट,
कुछ वातानुकूलित घर और
कुछ नये रिश्ते—
चांद और धरती के,
लेकिन कहाँ हैं
चेहरे पर पसरीं
चन्द मदद पसीने की वे बून्दें
जो मोती के हरफ बनकर
गढ़ती हैं इतिहास,
भूख के कुनबे में
फैलता हुआ ईमानदार विद्रोह
जिसकी बुनियाद
टुच्चे नारे नहीं
बेसब्र होता हुआ श्रम है ?

# आकांक्षाएँ प्रेरक हैं

आकांक्षाएँ—
प्रेरक है—उम्मीदों की
माँ है—
पेट में पलते हुए संघर्षो की,

दृढ़ करती हुई हठों को
आकांक्षाएँ भरती हैं आत्मा—काया में
पहुँचाती है
एक अन्धेरी खोह से
बिजली की रोशनी तक
उद्घाटित करती हुई
कि तुष्टि ठहराव है—मृत्यु है

दौड़ा मारती हैं मन को
थका मारती है तन को
बेचैन करती हुई आकांक्षाएँ
भरती हैं—कोमल अर्थ
खुरदरे अर्थहीन जीवन में
और अग्निव्यूहों को
तोड़ने के लिए ललकार कर
साहस के मूल्यों से
करती हैं पुरस्कृत।

# विचार फुटपाथों पर सोते हैं

विचार
नहीं होते कायल
कलम, लिपि, भाषा के
जन्म लेते हैं वे
बिच्छू के डंक से
बनते हैं प्रौढ़ और पोख्ता
हृदय की चीख से—पुकार से,

विचारक होता है
वह मूर्ख जो
अपनी हिकमत और हिम्मत से
पत्थर पर उगाता है दूब
दार्शनिक होता है
वह पागल जो
धर्म और जाति की तोड़ता है दीवारें
विद्वान होता है
वह अपढ़, गँवार जो
अनीति के विरुद्ध
बन जाता है इस्पात,

विचार नही बसते
कविता, कहानी या आलेख मे
दीखते हैं वे
ईंट जोड़ने में
जंजीरें तोड़ने में
पत्थर काटने में
खाई पाटने में,

विचार घरों में नहीं
सड़कों के किनारे
फुटपाथों पर सोते हैं
खेतों खलिहानों में
संघर्ष अपने पसीने से
विचारों का बीज बोते हैं,

विचार होते हैं कायल
धड़कन के—गति के
खुद के खिलाफ शिनाख्त के,

वे शरीर पर उभर आई
खरोंचों से निकलते हैं
और आत्मा के भीतर पैठकर
ज्वालामुखी सा पिघलते हैं,

विचार न बर्फ की ठंडक हैं
न आग की जलन है
वे आग और बर्फ की
टकराहटों का प्रतिफलन हैं

विचार रक्त बनकर टपकते हैं
गोश्त में पसीजते हैं
और हड्डियों में कौंधते हैं।

# कायर सदी

हवा पर पाँव रखकर चलना
अब नहीं है सम्भव
पूरी सदी
करने लगी है संजीदगी से महसूस
पाँव और कमर का दर्द
पर अभी भी
किसी ठौर की तलाश में
वह
नहीं हो पाई है
संघर्ष सापेक्ष,

हवा पीकर
हवा पर चलते हुए
कोई कबतक अपने को चला सकता है,
जमीन पर
खड़ा भर होने की जगह मिल जाय
तो आसमान को फाड़ना
बहुत आसान होता है,
यही तथ्य
पूरी सदी को कर रहा है परेशान
और गुस्सैल साँड़ की तरह
उसे उठाकर दे रहा है पटकनी,

लेकिन बदन का कोई मरज समझ
दर्द की गोलियाँ खाने के
निरर्थक अभियान में
फिलहाल वह
चुप है बिल्कुल

# हाथों की यात्रा

शरीर की जर्जरता मत देखो
हाथों की कठोरता देखो
जिसमें छुपी है
निर्द्वन्द्व विकास की दुर्दान्त कथा

हाथों में उगी—दो उदास आँखें
देखती हैं सबकुछ
गुनती हैं सबकुछ
जानती हैं वे—
अब शरीर का कोई अर्थ
रह नहीं गया है
अर्थ रखता है केवल
हाथों का डटे रहना,

हाथों ने जमीन फोड़ी
आकाश में सीढ़ियाँ बिछाईं
चीजों को शक्लें दीं
और शरीर को भूख पिलाई
ये आँखें
आँखें मलमल कर देखती हैं
शरीर के साथ हुए इस बर्बर अन्याय को
साफ साफ पढ़ती हैं
रेखाओं में छुपी भाषा को
कि सख्त हाथों का इतिहास
जितना साहसिक और मजबूत है
कहीं उससे अधिक भयंकर है
खुरेचे शरीर का जर्जर भूगोल।

यह सत्य है
कि हाथों ने
आदमी को संघर्षों से जोड़ा है
पर मन और शरीर को
जगह-जगह तोड़ा है
अब समझने लगी हैं आँखें
कि शरीर में बर्फ
और हाथ पर आग रखकर
आदमी नहीं चल सकता,
हाथों को अन्धाधुन्ध चलाकर वह
सभ्यता का अध्याय तो जोड़ सकता है
पर नहीं जूझ सकता
अनुतप्त शरीर की विरूपता से

हाथों की यात्रा
अब इन आँखों को
करने लगी है विदग्ध
क्योंकि अब
दीखने लगा है उसे कि
हर कदम पर हाथ की कुदाल
उसे कर डालती है लहूलुहान ।

# दुकान

सिन्धु की तरह
उमड़ता आन्दोलन
तूफान की तरह
हहराता चुनाव
आकाश से टूटकर
बरसता हुआ समर्थन
और परिवर्तन के जबर्दस्त आश्वासन
शो केस में पड़े बिक रहे है।

हाथों में
दधीचि की हड्डियों का
नमूना लिए
विक्रेता इन्हें बेच रहा है
कौड़ियों के मोल
और देखते हुए वस्तुओं की उपयोगिता
क्रेता
कर रहा है मोलभाव।

एक तरफ कटने की प्रतीक्षा में
बँधी हैं बकरियाँ
जिन पर संसद ने अभी-अभी
लगाई है मुहर
स्वस्थ होने की
दूसरी तरफ टंगा है
बासी दुर्गन्ध फेंकता
हिरण का गोश्त
नस्लवाद, रंगभेद
और मजहबी उन्माद के कारकों पर
जोरदार प्रहार करते
लटक रहे हैं कुछ नारे

जिनके सूत्रधार
खरीदार की मुद्रा में
मुंहमांगा मूल्य चुकाने को
पंक्तिबद्ध खड़े हैं तैयार,
वस्तुओं की बहुलता है
किस्मों में विविधता है
समानता है
सिर्फ उनमें एक ही
कि किसी भी वस्तु में
नहीं है कोई अर्थ ।

# कर्तव्य-बोध

आदिम साम्यवाद के
कैनवास पर बना
पहाड़ों और वनों का तैलचित्र
अब हो चला है धुँधला,
इसकी जिम्मेदारी
हम समय पर नहीं मढ़ सकते
और न ही कलाकार पर
यह कसूर सारा का सारा है
उस नराधम का
जिसने कला की परिभाषा
खेतों और मिलों से न लेकर
ली है अनन्त आकाश से।

उसके पारिभाषित शब्दों को
आत्मसात करने की
प्रक्रिया में
हम लगातार
होते रहे हैं हम बिस्तर
अपनी माँ के साथ
जबकि
अभी भी
पहाड़ और वन
नंगे होकर
करते हैं पूजा
अपनी माँ की।

खेतों में
और मिलों के बने कपड़ों में
आकाश की गन्ध की तलाश
है एक दिवास्वप्न ही तो!

उगा सकते हो
तो चमकाकर
धुंधले तैलचित्रों को
उगाओ
उस पर
अपनी आत्मा की तूलिका से
उजले और लाल फूल,
जो पहाड़ों और वनों के साथ
खेतों और मिलों को भी
कर दें सुगन्धित।

# बयान

अदालत में
'जो भी कहूँगा सत्य कहूँगा
सत्य के सिवा कुछ न कहूँगा'
कहने तक
वह पहने रहा शराफत की लिबास
फिर कपड़े खोल कर हो गया नंगा
नागफनी के काँटे
चुभोते हुए अपनी जीभ में
बोला वह गरज कर—
जिन्दगी में पहली बार
मैंने खाई है झूठी कसम,

लिखते देख मुन्सिफ को
उसने तड़प कर छीन ली कलम
और पूछा शान्त स्वर में—
जो कुछ तुम सोचते हो मेरे बारे में
क्या वह लिख सकते हो ?

सोचने और लिखने का भेद जाने बिना
तुम क्या
तुम्हारा बाप भी नहीं कर सकता न्याय ।

# ख़ूँख़ार मौसम

शहर में
कल पहाड़ उग आया
आज बारिश हुई।

छतों पर टहलना
कितना खतरनाक है आजकल
कब आ गिरेगा
बादल सिर पर
कहा नहीं जा सकता
घरों में कैद हो जाना ही
यदि है इसका विकल्प
तो मैं समझूंगा कि
मौसम ने ही
किया है विश्वासघात
ऐसे में क्या पता
हवा की बदनीयती
दीवारों, चौखटों को तोड़ दे
बाढ़ की करवट में
समा जाय समूचा मकान
शहर में जगह जगह
काँटेदार दरख़्त उग जायें,
तब घरों में
कैद होने के विकल्प को
बेमानी करते हुए
बाहर रहकर
लड़ा जा सकता है
मौसम के उत्ताप से
पहाड़ों से गढ़कर ईंट और पत्थर
बचाया जा सकता है शहर को
जंगल होने से

धूप न सही
आग में ही
तपा लो सर्द हाथों को
मौसम बदलने के निश्चय को
ओढ़ लो सिर पर
और जोड़ दो खुद को
मौसम, पहाड़, जंगल, धूप, सड़क से
ताकि आतंक, खौफ
से पा सको मुक्ति ।

# संक्रमण

वे यात्राएँ बड़ी खतरनाक होती हैं
जिनमें
पीढ़ियाँ बदलती हैं अपना केचुल
मूल्यों को कुचलना
उनके लिए आसान तो होता है
मगर पीढ़ियों के लिए मुश्किल

यात्राएँ थकती हैं
मगर ठहरतीं नहीं
बदलती हैं
मगर लौटती नहीं
एक एक डग का इतिहास
अंकित हो जाता है
सड़क के दोनों ओर खड़े दरख़्तों पर,

एक गुफा से दूसरी गुफा
एक घाटी से दूसरी घाटी
एक जंगल से दूसरे जंगल
से गुजरती हुई यात्राएँ
बटोरती हैं अनुभव
और रास्तों का कर डालती हैं इजाद
आग और पानी की तरह
रास्तों का भी होता है अपना इतिहास,
यात्राओं की तरह
पीढ़ियों की भी
नहीं ठहरने या लौटने की मजबूरी
उसे पल भर में बना देती है एक युग
और मूल्य
ठगे से भौंचक
रह जाते हैं खड़े—

# मेरा प्यारा नाम

सहस्र नाम हैं मेरे
पर उनमें से एक
बस एक
खून में सनी मिट्टी का नाम
बहुत भाता है मुझे,
क्योंकि यही एक नाम
विरासत है मेरे पुरखों को
यही है वह नाम
जो पहुँचाता है मुझे
धरती से आकाश तक।

# अस्तित्व-बोध

घर आए आदमी से
मैंने पूछा—
तुम्हारा नाम,
तुम्हारा मुकाम,
तुम्हारा काम ?
उसने कहा—
बैल हूँ,
गाँव में रहता हूँ,
गाड़ी खींचता हूँ।

मैंने पूछा—
तुम चाहते क्या हो ?
उसने कहा—
साँड़ बन जाना.
मैंने कहा—
तुम साँड़ बन जाओगे
तो मैं
मैं नहीं रह जाऊँगा,
इस पर हैरत अंगेज स्वर में
उसने पूछा—
मेरे शक्ल-परिवर्तन से
आपका क्या वास्ता ?

मैंने उसे समझाया
सवाल शक्ल बदलने का नहीं
शक्ल पहचानने का है,
जब अस्तित्व-ज्ञान ही
रहस्य है शक्ति का
तो शक्ल-परिवर्तन है अर्थहीन
तुम बैल रहकर भी
अपने भीतर
भर सकते हो
साँड का अस्तित्त्व
क्योंकि
शायद तुम नहीं जानते
गाड़ी खींचना
साँड के बूते से बाहर का काम है।

वह हँसने लगा
साँड के डकराने की भाषा में
और मुझपर थूककर
आगे बढ़ गया।

## सन्देह की गिरफ्त में

तुम्हारा आना
पैदा करता है एक जायज सन्देह
क्योंकि
कहा था तुमने—
मैं खुद नहीं आऊँगी
तुम्हारा खुद-ब-खुद आना
उगाता है एक साथ कई सवाल

शायद तुम्हें पता चल गया हो
कि ओढ़ लिया है मैंने
कुचली इच्छाओं को
तुम्हें ले आने के लिए
हो गया हूँ तपस्यारत
या कि तुम्हारे सिन्दूरी ललाट को
अब किसी के खून की
न रही हो जरूरत
या कि तुम प्यार में
भूल बैठी हो इतिहास।

गो कि तुम्हारे आने की सूचना
मेरे जीवन की सबसे बड़ी खुशी है
पर बगैर कीमत
बेमानी लगती है यह खुशी,
कहीं तुम्हारे आने की खबर
इतिहास को कत्ल करने की
साजिश तो नहीं....?

अगर नहीं है यह सब
तो मुझे क्यों दी जा रही है सूचना
तुम्हारे आने की !
क्या मैं
तुम्हारे कालजयी, सुन्दर मुख को
पहचान सकने में
हो गया हूँ असमर्थ ?

अगर तुम्हारा आना
सच ही है
तो फिर
क्यों बाँधे जा रहे हैं मेरे हाथ,
क्यों सिले जा रहे हैं मेरे होंठ,
क्यों बाँधी जा रही है मेरी आँखों पर पट्टी ?
जबकि तुम्हें पता है
तुम्हारी श्वांस की एक गन्ध से भी
मैं तुम्हें
पहचान सकता हूँ—हू-ब-हू,
ऐसे में तुम्हारा आना
मेरे लिए
कुछ नहीं
सिवा एक आतंकग्रस्त आश्चर्य के।

# प्रतिबिम्ब

दर्पण को मत देखो
मुझे ही देखो
तुम्हारी हू-ब-हू शक्ल
दीख जायेगी मुझमें ।

सहमी हुई आंखों को
देखते ही पहचान लोगे
तुम अपने कलेजे की धड़कन
नीले होठों में
हो उठेगा परिलक्षित
आक्रोश का जहर
जिसे पीना
तुम्हारे रोजमर्रे की मजबूरी है
चेहरे पर पड़ीं झुर्रियों में
तुम्हें साफ दीख जायेंगी
अपनी प्रतिज्ञाओं की ढहती दीवारें
ललाट पर पड़ी सिलवटों में
तुम पाओगे
टुकड़ों में बंटे
अपने संघर्ष का प्रतिरूप
रूखे उलझे बालों में दीखेगी
क्षत विक्षत हुई
तुम्हारी नैतिकता की
सूखी घासों की प्रतिच्छाया

मुझमें तुम्हारा चेहरा भी है
और चेहरे की प्रतिक्रियायें भी
इसलिए मुझे ही देखो
दर्पण को मत देखो ।

# वैषम्य

जहाँ तुम हो सकते थे
वहाँ तुम नही थे
था केवल तुम्हारा नाम
तुम्हारे रचे गीत
वहाँ अगुवाई कर रहे थे,

धुनी हुई
सफेद रूई जैसे शब्दों को
लोग बाग हवा मे उछाल रहे थे।
लेकिन तुम्हारे
लगातार नहीं होने के अहसास ने।
उनमे कर डाला
सन्देह का बीजारोपण

उन शब्दों को
तुम्हारे पूरे वजूद के साथ
ठर्रे की बोतल की तरह
गटागट पीकर डकार गये वे।

दर असल
जहाँ तुम नही हो.सकते थे—
वहाँ तुम थे
पर तुम्हारा नाम नही था
तुम्हारे रचे गीत
तुम्हें ही
सब गुमराह करते से हो रहे थे प्रतीत

तुम, तुम्हारे वजूद
और तुम्हारे गीतों ने
त्रिभुज के तीन कोण बनकर
सिर्फ हमारी इहलीला को ही
समाप्त नहीं किया
बल्कि हमारे गर्भस्थ शिशु का भी
घोंट दिया गला
और उठ खड़े होते हुए युग को
बना दिया विकलांग

मैं अकेला
एक साथ
गीतों में अपनी मौजूदगी
और लोगों के बीच होने
की कूवत तो रखता हूँ
पर मेरे विश्वास के बीज
चर जाते हैं
तुम्हारे सन्देह के कीट।

# गूढ़ रहस्य

मुझे ले जाकर पटक दिया उन्होंने
सड़क के चौराहे पर
और कहा—
भीड़ को देखो
क्या यही है, कविता का आयाम ?
तो फिर कहाँ है
तुम्हारी रूपायित कविता का अर्थ ?

भीड़ में खड़े लोगों की
पतली टाँगों में घुस गया मैं
और खोजने लगा
कविता का गूढ़ रहस्य
चेहरों को छू-छू कर पहचाना
पसलियों को चाट-चाट कर जाना
कि भीड़ कविता का आयाम नहीं
वजूद होती है
कि भीड़ कविता का रहस्य नहीं
सत्य होती है
कि भीड़ कविता का अर्थ नहीं
जीवन्त रूप होती है।

भीड़ से बाहर
बुलाने लगे वे मुझे
पर मेरा चेहरा
अनेक चेहरों पर पसर गया था
टार्च की तेज रोशनी में
उन्होंने ढूँढ़ा मुझे
पर मैं उनकी पहुँच से बाहर
चेहरों की समुद्र में
कविता का खजाना पा
हो रहा था निहाल

# लोहे के शब्द

कितना कठिन है
आग में तपे हुए शब्दों को चबाना
उन्हें निगलना, पचाना
और उनके अर्थ को हाथों में थामना;

शब्द चुनौती बन जाते हैं
अर्थ ताल ठोंकने लगते हैं
वर्जनाओं के हाशिए मिटने लगते हैं
इतिहास बड़ा
और भूगोल बौना बन जाता है
त्रासदियां चीखने लगती हैं
चतुर्दिक एक योजनाबद्ध प्रलय फैल जाता है
शान्ति तब्दील हो जाती है
जहरीली घासों में,

फिर शुरू हो जाती है
अस्तित्व को खण्डित करने की साजिशें
अर्थ को खतम करने का बेमतलब प्रयास
मशीनों में छिपे
और फसलों में दुबके विचारों पर
गोली दागने का जंगजू अभियान।

तब शब्द
केवल अहसास भर नहीं रह जाते
वे बाज की तरह
अपने पंख पर हमें बिठाते हैं
और आत्मा को
हँसते हुए
विकृत यातनाएँ झेलने का
गुर सिखाते हैं

प्रसव वेदना की तरह
सह्य हो जाता है सब कुछ।
मुश्किल होता है
सिर्फ शब्दों को चबाना
उन्हें निगलना और पचाना
और उनके अर्थ को हाथों में थामना।

मैं अभी भी मानता हूँ—
फासला सिर्फ एक पतली गली का है
जिसे मिटाने के दो ही हैं विकल्प हैं
या तो तुम्हें अपना मुँह
मेरी तरफ घुमाना होगा।
या फिर मुझे
रास्ते का कोण ही बदलना होगा।

# रेस के घोड़े

लोग हवा बनने से कतरा रहे हैं
लेकिन इसके सिवा चारा भी क्या है
कि वे फेफड़े को अलग फेंककर
लगातार अपनी रफ्तार बढ़ाते जायें।

मुट्ठी भर चावल
और लाज ढकने भर चीथड़े का बुखार
भूत की तरह सता रहा है।

पेड़ों में समाकर
विश्राम करने की इच्छा
अहसास के पत्तों पर डोलती है
क्योंकि
उनकी पीठ की आँखें
सवार को टटोलती नहीं
स्फूर्ति, छलांग को तौलती नही
घेरे को तोड़कर
शून्य तक पहुँचने की तूफानी तासीर
महसूसते हुये भी
लोग हवा बनने से कतरा रहे हैं

लेकिन फेफड़े को अलग फेंककर
रफ्तार बढ़ाने की विवशता
उन्हें दौड़ाती रहेगी एक दायरे में
पेट में पांव डालकर
पीढ़ियों को कुचलते हुए
वे दौड़ेंगे
और दम्भ भरते हुए
अपने ही भाइयों से होड़ लेंगे।

## सम्भाव्य

तुम अकेले घर में हो
मैं घर से बाहर भीड़ की चिल्लाहटों में
हम दोनों अपनी-अपनी सीमाओं में
तलाश रहे हैं—एक दूसरे को
और नहीं पाने की झुंझलाहट में
शुमार हो रहे हैं
एक तीसरे आदमी में

तुम मुझे अपने साथ
घर में देखना चाहते हो
मैं तुम्हें घर से बाहर
अपने अभीष्ट से जोड़ना चाहता हूँ,

तुम अकेले
और तुम्हारा घर
किसी भी अर्थ में कमजोर नहीं
मेरी बाहर की दुनिया से,
क्योंकि
छोटा हो या बड़ा
हर युद्ध जान लेवा होता है;
तीसरे आदमी में शुमार हो जाना
तुष्ट होने का विकल्प नहीं
पीठ दिखाकर भागने की कायरता है।

अच्छा है
तुम घर से बाहर निकल कर
बन्दूक की गोली खाकर ढेर हो जाओ
मैं तुम्हारे घर में घुसकर
टाइम बम के धमाके के साथ
टुकड़े-टुकड़े में फट जाऊँ
और हम दोनों
अपनी समान नियति के हाशिए पर
हठात् मिल जायें।

# कर्फ्यू के बीच

एक ही समय कई हाथ
मेरे दरवाजे पर दस्तक देते हैं
फुसफुसाहटों में एक चीख है—आतंकहीन
जो मुझे खींचती है अपनी ओर निरन्तर
सशंक हो उठता हूँ मैं
यकीन करना फुसफुसाहटों की शक्ल पर
आजकल खतरे से खाली नहीं,
एकाएक मुझे खाने लगता है
आशंकाओं के सच हो जाने का डर

कर्फ्यू में आवाजों का मतलब है—हादसा
जब सोचना तक
मौत के वारण्ट पर हस्ताक्षर करना है
तो कौन खाए बोलने का जहर···?
मैं दबे पाँव
खिड़की के शीशे से झांकता हूँ
सूरज के चमचमाते प्रकाश में
बिछा है—खौफनाक अन्धेरा
सड़क पर खिंचा है—सन्नाटा
मैं धीरे से सांकल खोलता हूँ
तभी भड़भड़ाकर दरवाजा खुलता है
और गली के कुछ संगतराश
धड़धड़ाते हुए घुस आते हैं भीतर
उनके हाथों में हैं—छेनी और हथौड़ी,
आँखों में है—
अहर्निश लड़ा जाता हुआ एक युद्ध

मुक्ति का—शान्ति का
वे बताते हैं—
हम पनाह लेने नही
विप्लव के दायरे से
तुम्हें निकालने आए हैं
तुम चुप नहीं रह सकते
या तो शान्ति के लिए युद्ध करो
या युद्ध के लिए
सब कुछ देखते हुए शान्त हो जाओ
कहते कहते वे अचानक
अजन्ता, एलोरा की प्रस्तर-मूर्तियों में
तब्दील हो जाते हैं
उनके अंग प्रत्यंग से
फूट रही होती है—लहू की धार
रक्त का एक तेज फौव्वारा
आकर गिरता है।मेरी आँखों में,

मेरी बँधी मुट्ठियाँ
खुल जाती हैं
मैं दौड़कर उठा लाता हूँ
अपनी कलम
और उसे हवा में लहरा
सड़क का सन्नाटा-चीरता हुआ
चिल्ला पड़ता हूँ—
सृजन की आत्मा—जिन्दाबाद !

# खबरों की नामौजूदगी

अखबार की सुर्खियों में
गाँव लंगड़े हो गये हैं
शहर बुखारग्रस्त हैं
लेकिन खबरें नहीं हैं

खबरें—
जो पर्याय हैं—मन की उत्तेजना के
अब रिपोर्ताज हैं—
गलत बयानों, झूठे आश्वासनों की,
और खतरनाक सत्य
महज एक औपचारिक बात।

आँखें थक गयी हैं पढ़ते-पढ़ते
कि आदमी कुत्ते को काट रहा है
कि नाग बीन बजा रहा है
कि पुरुष बच्चा जन रहा है।

यह दृष्टि या श्रवण का परिवर्तन नहीं
खबरों के मानदण्ड का परिवर्द्धन नहीं
संवेदना की दुर्घटना है
प्रतिक्रियाओं के बिम्ब का विलोम है।

लेकिन अभी भी
अखबार में खबर की जगह
खबर में अखबार है,
जबतक शराब की दुर्गन्ध
और गुलाब की सुगन्ध
एक जैसी नहीं प्रतीत होतीं
तबतक खबरें
अपनी शक्ल नही बदलेंगी;
अखबार की सुर्खियों में होंगे—
लंगड़ाते गाँव, बुखारग्रस्त शहर
लेकिन खबरें नही होंगी ।

# तिष्यरक्षिता का दर्द

दैहिक भूख
अनुताप बनकर
फैल गई है अंग अंग में।

पूर्ण विकसित फूल पर
भौरा केवल मंडराता है
बैठता नहीं
और न डंक ही गड़ाता है
पंखुड़ियों की सफेदी
लालिमा में परिवर्तन होने को तड़पती है,
अभिव्यक्तियों में फूटता
अतृप्त दमित प्रेम
आदिम सभ्यता को जीवन्त करता है।

भूख ने कब जाना है
रोटी और उसके बीच के रिश्ते को?
मर्यादा के विषैले दांतों को?
लेकिन
शरीर, मन, आत्मा की भूख—
प्राकृतिक अनिवार्य भूख
एक होकर भी
नारी और पुरुष को बांटती है
एक को तिरस्कृत करती
दूसरे को चाटती है,

ठंडे, बूढ़े, असक्त हाथों में फंसी
वेगवती धारा का दर्द
कौन जानता है ?
जानता होता
तो
उसकी निश्छल, प्राकृतिक, अनिवार्य भूख
कुलटा, व्यभिचारिणी का पर्याय नहीं बनती।

## क्षणिक उत्तेजना

अक्सर मेरी आंखों की शान्त झील में
नीले कमलों से लदी
खड़ी हो जाती है एक किश्ती
जिसमें से निकल कर दो बाहें
थाम लेती हैं पतवार
कमल की पंखुड़ियां खुल जाती हैं,

मेरे नथूनों में भर जाती है
एक कामाकुल गन्ध
क्षितिज सिमट कर
एक छोटा शामियाना बन जाता है
और दिशाएँ
झील की गहराई में खो जाती हैं
सब कुछ गहगहा उठता है
किश्ती धीरे-धीरे खिसकती है।

अचानक
एक यक्ष मिथुन आकर
नीले कमलों को खाने लगता है
कश्ती डगमगा कर डूबने लगती है
मैं गुस्से से कांप उठता हूँ
और घोप लेता हूँ
अपनी आँखों में कील……।

# मृगतृष्णा

तुम्हारा नाम
एक चित्र है
पीले फूलों के दरख्त का
तुड़ी-मुड़ी-सूखी
पत्तियों का दरख्त,
जो गर्म हवा के झोकों में
ढूंढ़ता रहता है निरन्तर
वसन्ती पतझड़ की तासीर ।

तुम्हारा रूप
एक रेगिस्तान है
बवण्डरों और ढूहों का
सनसनाते, बालू के भँवर उठाते
तूफान का रेगिस्तान,
जो सपाट बालुई रेत में
ढूंढ़ता रहता है निरन्तर
वनस्थली हवा का नखलिस्तान ।

तुम्हारा मन
एक दर्पण है
चीखों, दहाड़ों, और पहाड़ों का
अदेखे, अबोले शब्दों से बनी
रेखाओं का दर्पण,
जो मद्धिम किरनों में
ढूंढ़ता रहता है निरन्तर
उज्ज्वल छाँह का प्रतिबिम्ब ।

तुम्हारी आत्मा
एक कविता है
रक्त निचुड़ती हुई अभिव्यक्तियों को
पुराने सन्दर्भों को
नये परिवेशों से जोड़ती
संवेदनाओं की कविता,
जो शुष्क अशिष्ट भाषा में
ढूंढ़ती रहती है
शिष्ट और सुन्दर प्रतीकों का बिम्ब।

# सन्देह निवारण

मैंने कहा रात से
ओ रात !
तुम्हारा अन्धकार सूरज के कारण है
सूरज को सार्थक तुमने बनाया है
बेफिक्र रहो
अपना प्रकाश गंवाकर भी
वह तुम्हारा अस्तित्व नहीं मिटा पायेगा।

मैंने कहा काँटे से
ओ काँट !
तुम्हारी चुभन फूल के कारण है
फूल को सार्थक तुमने बनाया है
परेशान मत होओ
अपनी स्निग्धता और सुगन्ध गंवाकर भी
वह तुम्हारा अस्तित्व नही मिटा पायेगा।

मैंने कहा मृत्यु से
ओ मृत्यु !
तुम्हारा दंश जीवन के कारण है
जीवन को सार्थक तुमने बनाया है
विकल मत होओ
अपनी आयु गंवाकर भी
वह तुम्हारा अस्तित्व नही मिटा पायेगा।

मैंने कहा मानव से
ओ मानव !
तुम्हारी नश्वरता ईश्वर के कारण है
ईश्वर को सार्थक तुमने बनाया है
रोओ मत
अपनी अमरता गंवाकर भी
वह तुम्हारा अस्तित्व नहीं मिटा पायेगा।

मैंने कहा स्वयं से
ओ मेरे मन !
तुम्हारी पीड़ा सुख के कारण है
सुख को सार्थक तुमने बनाया है
धैय मत खोओ
अपनी इच्छाएँ गंवाकर भी
वह तुम्हारा अस्तित्व नहीं मिटा पायेगा।

# तरूप्रेम

मेरी टहनियों पर बैठकर
आकाश को भाषा पढ़ो
जड़ों में समाकर सुनो
धरती का स्पन्दन,
त्रस्त पत्तियों पर
कर दो अंकित दहकता चुम्बन
गाओ पंख फड़फड़ाकर
वही एक

वही मौन क्रन्दन।
उदास आँखों की व्याकुल गन्ध
उड़ेल दो मेरे माथे पर
जीवन की कठोर आँच में पके
फलों के मधुआए ज्वार में
सराबोर कर लो—
अपना एक-एक अंग,
बाँध लो आकुल तने का
गदराया यौवन
कठोर भुजबन्ध में।
आओ
मेरे अजानुबाहु में समाकर
अमृत बीज का स्वाद चखो
घनी छाँह में
जीवन्त प्रतीक्षाओं को
कुछ पलों का विश्राम दो
कौन जाने
फिर तुम्हारे पल की छुअन
आए या न आए।

मैंने कहा मानव से
ओ मानव !
तुम्हारी नश्वरता ईश्वर के कारण है
ईश्वर को सार्थक तुमने बनाया है
रोओ मत
अपनी अमरता गंवाकर भी
वह तुम्हारा अस्तित्व नहीं मिटा पायेगा।

मैंने कहा स्वयं से
ओ मेरे मन !
तुम्हारी पीड़ा सुख के कारण है
सुख को सार्थक तुमने बनाया है
धैय मत खोओ
अपनी इच्छाएँ गंवाकर भी
वह तुम्हारा अस्तित्व नहीं मिटा पायेगा।

# तरूप्रेम

मेरी टहनियों पर बैठकर
आकाश की भाषा पढ़ो
जड़ों में समाकर सुनो
धरती का स्पन्दन,
त्रस्त पत्तियों पर
कर दो अंकित दहकता चुम्बन
गाओ पंख फड़फड़ाकर
वही एक

वही मौन क्रन्दन।
उदास आँखों की व्याकुल गन्ध
उड़ेल दो मेरे माथे पर
जीवन की कठोर आँच में पके
फलों कि मधुआए ज्वार में
सराबोर कर लो—
अपना एक-एक अंग,
बाँध लो आकुल तने का
गदराया यौवन
कठोर भुजबन्ध में।
आओ
मेरे अजानुबाहु में समाकर
अमृत बीज का स्वाद चखो
घनी छाँह मे
जीवन्त प्रतीक्षाओं को
कुछ पलों का विश्राम दो
कौन जाने
फिर तुम्हारे पल की छुअन
आए या न आए।

# विभ्रम

अन्धी गुफाओं को
जाती पगडण्डी पर
निर्द्वन्द्व पाँव बढ़ाता रहा
और गांव की स्वप्निल तस्वीर
मन की दीवारों पर
हर पल चिपकाता रहा।

मील के पत्थर पर
उग आई घासों में
शुतुरमुर्ग की तरह
सिर छिपाता रहा
पड़ावों पर खड़े
प्रश्नचिह्नों से मुँहफेर
अपने ही कदमों को
दोषी ठहराता रहा।

हाथों से सिरतक की
दूरी को भूलकर
इक लम्बा फासला
व्यर्थ पटाता रहा
जीवन भर इसी तरह
बालू की भीतों पर
नित्य नये ढूहों का
घर बनाता रहा।

# विभ्रम

अन्धी गुफाओं को
जाती पगडण्डी पर
निर्द्वन्द्व पांव बढ़ाता रहा
और गांव की स्वप्निल तस्वीर
मन की दीवारों पर
हर पल चिपकाता रहा।

मील के पत्थर पर
उग आईं घासों में
शुतुरमुर्ग की तरह
सिर छिपाता रहा
पड़ावों पर खड़े
प्रश्नचिह्नों से मुँहफेर
अपने ही कदमों को
दोषी ठहराता रहा।

हाथों से सिरतक की
दूरी को भूलकर
इक लम्बा फासला
व्यर्थ पटाता रहा
जीवन भर इसी तरह
बालू की भीतों पर
नित्य नये ढूहों का
घर बनाता रहा।

# प्रतीक्षा

-समय को
भरकर अंक में
मैंने कहा—
एक पल ठहरो न मेरे अप्रतिम पल
और उसके अधरों को चूम लिया
तभी
उसके पीछे खड़े दूसरे पल ने
उसे ढकेल कर
जाने कहाँ उड़ा दिया।

अब
उसकी जगह
यह मुझे प्यार करने लगा,
यद्यपि
इसका प्यार निश्छल था
पर इसमें वह मिठास भरा दर्द कहाँ ?
तभी से
उसकी तलाश में
मैं रोज
पहाड़ी की चोटी पर खड़ा होकर पुकारता हूँ—
आओ न मेरे प्रिय पल
अपने उस रूप में न सही
बहन बनकर ही आओ
एक बार
सिर्फ एक बार
और मुझे प्यार करो।

# समय

अस्तित्व पर निरन्तर दस्तक देता
एक गतिशील बिम्ब
जिसकी हर साँस पर
संघर्ष नर्तन करता है,
सभ्यता के जंगल को चीरता
एक मौन अट्टहास
तुम्हारे होने का अहसास कराता
यहाँ-वहाँ—
सभी दिशाओं में
अनुगूँज होकर फैल गया है
और तुम
अपने घर की चहारदीवारियों से
झाँक रहे हो।

तुम्हारी पकड़ से बाहर
मुक्त आकाश में
वह बेतहाशा दौड़ा जा रहा है।

कहाँ है
सूरज को भुजबन्ध में कसने की
तुम्हारी चुनौती ?

## धूप

जीवन पर उग आईं दूब की फसलें
सूख कर चूर हो रही हैं,
उतर आई है—समय की उष्णता
मन की सर्दतलहटी में
जर्द करती हुई आकांक्षों को,
चुहचुहाते पसीने में
व्याकुल इच्छाएँ टिघल रही हैं.

खौलते हुए रक्त की गन्ध
समा रही है
धरती के कण कण में
ऐसे में कहीं
आसमान पिघल कर चू पड़े
तो क्या हो ?

# ब्रह्माण्ड

खण्ड–खण्ड में बँटे
कार्यों और रूपों में भिन्नता
आन्तरिक गुणों में एकता लिए
गतिशील आकुल
अन्तरिक्ष में प्राण फूँकते
जैविक और वानस्पतिक
रचनाओं में संलग्न
विनाश की मिट्टी में
सृजन की नई पौध रोपते
एक दूसरे पर आश्रित
सम्बद्धता का आमन्त्रण भेजते
क्षितिज में तैर रहे
ओ आकाश पुत्रो !
अब मैं जान गया हूँ
कि तुम सारे के सारे एक हो,

मुझे पता चल गया है
कि तुम्हारे अस्तित्व का रहस्य
प्रेम और आकर्षण है ।

# अनुभूति

मैंने बन्द आँखो से देखा
वस्तुओं के भीतर
उठता अन्तंद्वन्द्व
जिसे बड़ी शिद्दत से
खुली आखों से देखने का था मुन्तजिर;

देखते ही डर गया मैं
कही उसके अन्तंद्वन्द्व की उष्मा
गला न दे
ऊर्जा मेरे भीतर की !

मैंने झट खोल दी अपनी आँखें
और निर्भीकता पूर्वक देखता रहा—
वस्तुओं की बाह्य निर्जीवता
महसूसता रहा—
उनके भीतर की सजीवता,
पृथ्वी और आकाश को क्षार करने का
उसकी धड़कन का माद्दा।

# रहस्योद्घाटन

मुझे कहने दो
वे तमाम सच्चाइयाँ
जिन पर तुमने
नीतियों, विधानों की ओट दे रखी है।

वन के सूखे मुरझाए
असंख्य अस्तित्वहीन पेड़ों के
अन्तहीन सिलसिले का
करने दो रहस्योद्घाटन
जिन्हें मैं जान पाया हूँ
वर्षों की काल-साधना के बाद;

कहूँगा मै
इस घने वन की
हरियाली खाकर डकारने की बात
रोशनी की एक एक किरण
गिरवी रखने की बात
अँधेरे की गुन्जलकों में
पेड़ों की आत्माओं के
नंगे, स्वच्छन्द विचरण करने
और अपनी मृत, विकृत आकृतियों की
काया में घुसकर
पुर्नजीवित होती
इच्छाओं के दमित होने की बात,
वे रहस्य
जो अब हो चुके हैं प्रकट
मै हूँ कि

तुमने
हाँ तुमने ही
धारण कर वसन्त का कलेवर
कोमल पत्तियों, सुवासित फूलों
गदराये स्वादिष्ट फलों, हरे मुलायम डंठलों पर
गड़ाया है अपना विष दन्त,
अपने कन्धे पर
हिंस्र पशुओं को दी है पनाह
तुमने
और केवल तुमने ही
स्वस्थ बलिष्ट पेड़ों के
काटकर तने
वन के पहरेदारों के स्वर्णिम महल के लिए
शहतीर और मेहराब बनाये जाने के अनुबन्ध पर
किया है हस्ताक्षर
तुमने ही
इनके अपने सगे मेघों को
बांध रखा है— दूसरी दिशाओं में,
अंधेरी धूप में
वन्य कुमारियों के साथ
*किया है बलात्कार,*
प्रतिक्षण चिल्लाहटों, क्रन्दनों, दहाड़ों का
बनाया है काला रेगिस्तान
जिस पर पड़े
तुम्हारे रक्तिम पदचिह्नों को
पहचान गया हूँ, अब मैं
दर्पण बन जाने दो मुझे
ताकि तुम्हारे रहस्यों का
कर सकूँ पटाक्षेप
और बता सकूँ कि
पर्वत घाटी के उस पार
वन का सगा बादल
फिर हो गया है।

इस बार तुम
रोक नहीं सकते हो
उसके
मुसलाधार बरसते हुए संघर्ष को ।

# अभीष्ट

महासमुद्र के ज्वार में खड़े
ओ मेरे मर्त्य पुत्रो !
जबतक तुम करते रहोगे अमृत की खोज
तबतक रहोगे मरणशील
यदि चाहते हो अमरता तो
विष के घड़े को कभी फेंकना मत
उसे नील-कण्ठ की तरह पी जाना
यदि हो सके तो
समुद्र के नीले जल में
अपने नीले अस्तित्व को कर देना विलीन ।

लहरों में समाये हुए
ओ मेरे जलपुत्रो !
तुम देव पुत्रों का कभी मत करना अनुसरण
अपने को कभी मत समझना दानव पुत्रों से श्रेष्ठ
मत्स्य कन्याओं पर फेंके गये पाश को
खण्ड-खण्ड कर
तटों की करते रहना रक्षा
यदि हो सके तो
उतर कर लहरों पर राजहंस की तरह
लगा देना मोतियों का ढेर ।

द्वीप-खण्डों पर ध्यानमग्न बैठे
ओ मेरे तपस्वी पुत्रो !
तुम अन्धकार से सन्धि करने वाले
छली सूर्य को कभी मत देना अर्घ्य
योगाभ्यास में सिर के बल खड़े हो
कभी मत खोदना जमीन अपने नीचे की
यदि हो सके तो
द्वीप शिखाओं पर शंखनाद कर
भूले-भटके दिशाहीन जल पोतों को
जगा देना अनुगूंज से

मृत्यु के भुजबन्ध में तड़फड़ाते
ओ मेरे मुक्तिकामी पुत्रो !
तुम कभी मत हारना जीवन के कल्पित सत्य से
मुट्ठी में बँधे
अपराजेय संघर्ष को खोलना मत कभी
यदि हो सके तो
समाविष्ट होकर पंक में
श्वेत, नुकीले कमल की शक्ल में
निकल जाना बाहर
और अपने ऊपर मर्दन करने वाले पाँवों में
गड़ जाना कील की तरह ।

## बलात्कार

उसने
धरा को कर दिया निर्वस्त्र
वह चीखी
अपनी जीभ लपलपाते कुछ नाग
लपके उस दुराचारी की ओर
वह बजाने लगा बीन
और एक एक कर सभी नागों को
सम्मोहित कर
बन्द कर दिया पिटारी में
अब भोगने के लिए
उसके सामने था
धरा का नग्न सुन्दर गात,
क्रन्दन ने
कर दी वृद्धि
उसके परमानन्द की
फिर भोगता रहा वह
चरम सुख
शताब्दियों तक
जितना ही अधिक वह तुष्ट होता
उतना ही अधिक पुष्ट होता।
एक दिन देखा उसने

धरा का तनुजा लक्ष्मी की
मांसल, मादक देहयष्टि
और जकड़ लिया उसे अंकपाश में
वह छटपटाई
रोई, चिल्लाई
बचाव में उसके दौड़ पड़े
कुछ मरियल से लोग,
अबतक पिटारी के नाग
उसके पालतू बन चुके थे
उसने मंत्र फूंक कर
छोड़ दिया उन्हें
नाग उन पर टूट पड़े
और वह लक्ष्मी पर
बरसती रही उसकी ( लक्ष्मी की ) चीत्कार
जिसमें भीग भींग कर
वह
होता रहा तृप्त।

सम्प्रति
वह धरा और लक्ष्मी को
भोर भोग कर
हो रहा है निहाल
वे मरियल से लोग
कर रहे हैं उसकी जी हुजूरी
अब मोटे होकर
और वे नाग
उसके तरकस में
पड़े हैं एकघ्नि की तरह

# मारीच

गाँव से आए प्रदर्शनकारियों को,
जिनके रक्तबीज में
घुला है तुम्हारा नमक
सन्दर्भों से मत जोड़ो,

शान्ति का नारा
देती है—केवल जुबान
समर्थन का आश्वासन
देती है—केवल आवाज
सुनना है तो
सुनो—आँखों को
जो आह्वान करती हैं युद्ध का
समर्थन करती हैं विद्रोह का।

जबतक चेतना पर
रहेंगी तुम्हारी नमक की तहें
तबतक पाप और पुण्य का दर्शन
खड़ा रहेगा
वर्जनाओं का पहाड़ बनकर।

ठिठके हुए पाँवों में
दौड़ने का आवेग तो है
पर ये नही लांघ सकेंगे
नमक की पुश्तैनी दहलीज,
काश चेतना में
फूट पड़ती चिनगारी—जागृति की
तो वज्र बनकर टूट पड़ती
हवा में तनी मुट्ठियाँ
अपने ही नेतृत्वकारी पर
और फिर
कही कोई सीता हरण की घटना नही हो पाती।

# धर्म

चीजें नहीं दीखती
अपने असली रूप में,
क्योंकि हर दृष्टि
मोहताज है एक चश्मे का
जो निरन्तर
किये जा रहा है हत्या
संस्कृति और मनुष्यत्व की।

लम्बी दाढ़ी
और लम्बी जटाओं में
छिपे हैं
चीजों के असली चेहरे
शताब्दियों की यौगिक यात्रा
तय कर चुकने के बाद
टंग गयी है प्रज्ञा
अब खूंटी पर
अकेला मस्तिष्क अक्षम है
कुछ देख पाने में,

पर अभी भी
नंगी आंखों से
टटोला जा सकता है चीजों को
और फूल, कांटा, कीचड़, जल
सबको
रखा जा सकता है
उनके उचित स्थानों पर।

# गड़ेरिया

सूरज की पीली रोशनी में
डोलती एक लम्बी छाया
जिसकी लकीरें
आसमान ने गिरवी रख ली है
रोज पहाड़ों से नीचे उतरती है
और कल सुबह
सूरज की लाल किरनों में
अपनी हथेलियाँ बुलन्द करती है।

नून, मिर्च, प्याज और बासी रोटी सा
स्वादिष्ट जीवन
सन्तुष्ट होकर खेलता रहता है
भेड़ों के निर्दोष बच्चों के साथ

कहाँ है
घाटी का वह अन्धकार
जिसे पार करते हुए
आदमी थक जाता है!

# मछुआरा

लहरों की वक्ष छाती फोड़कर
समुद्र में सुरंग खोदता हुआ
ढूंढ़ता है वह रोज
कोई एक आश्रय
और रोज
ज्वार भाटा का उफान
ध्वस्त कर डालता है
उसका अर्द्ध निर्मित दरवा।

नंग-धड़ंग भूतनाथ की शक्ल में
अपनी हार को झुठलाता हुआ
अतल गहराइयों में पैठकर
वह
अपनी काया
कोयले सा जलाता है
अंजुरियों में भरकर मूंगे-मोती
किनारों को लुटाता है
भुजाओं में चुनौती लिए
उतर पड़ता है डोंगियों में
सरसराते हुए घुप अन्धेरे के बीच
जल समाधियों से निकालता हुआ
अपने पूर्वजों की लाशें;
वह
चाँदी सी मछलियाँ खाकर
उगलता है सोने के अण्डे
समुद्र में बिछाकर सीढ़ियाँ
उतर जाता है—
मौन गह्वरों में
जहाँ से सुनता होता है
तटों का शोर
लहरों की हलचल

ओर अपनी उदास उंगलियों से
जाल के फन्दे बुनता हुआ।
सोचता रहता है—
क्या यही है वह जाल
जिसमें मुझे
ओर मेरे पुरखों को फांसकर
तटों के पहरेदार
होते रहे हैं
आजतक मालामाल''''?

# निकोलाई आस्त्रोव्स्की के लिए

इस्पाती हड्डियों पर
मृत्यु सिर पटकती है
युद्ध के घाव चमकते हैं
पदक के सदृश
दूर से ही ज्योतिहीन आँखें
पढ़ लेती हैं शरीर को छेदकर
एक-एक अक्षर
आत्मा की भाषा का।
रोम-रोम में छिपे
संघर्ष के अग्निवाणों से आहत
बीमारी
पायताने बैठी हुई
ढूँढ़ती है—
आदमी की परिभाषा

क्या अजेय होता है आदमी
कि रोग का उपचार करता है
आराम से नहीं—काम से
नींद से नहीं—जागरण से ?

क्या अपराजेय होता है उसका जीवन
कि खाली हाथ होकर भी
विवश कर देता है
दुश्मन को
हथियार बाँधने पर ?

# प्रेमचन्द

तुम आए हो
अपनी विरासत में
किंचित सुधार का सपना संजोए
किन्तु तुम्हारी प्रासंगिकता की रेत में
वे शुतुरमुर्ग की तरह सिर घुसाये
मशगूल हैं बहस में कि
तुम्हें उनके बीच होना चाहिए या नहीं।

तुम्हारी भूखी धनिया,
जो लोटाभर पानी पीकर
सोती थी इत्मीनान से पसरकर
आज बलात्कारियों के डर से
हराम कर बैठी है अपनी नींद
पर बहस का मुद्दा तुम्हीं हो;

तुम्हारा श्रमश्लथ होरी
जो सामन्ती दबदबे में भी
भर लेता था, कुछ खर्राटे
आजकल पुलिस के डर से
रातभर जागकर बिहान करता है
पर गुस्सा तुम्हारी उपस्थिति को लेकर है;

तुम्हारा बेरोजगार गोबर
जिस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था
परदेस जाकर कमाने पर
आज रेल की छत पर भी शरण लेता है
तो उसकी हत्या हो जाती है
पर अभी भी तुम उन्हें
चुभ रहे हो कील की तरह;

तुम्हारे निखट्टू घीसू और माधव
जिन्हें अपनी इच्छा से
काम करने की स्वतंत्रता थी
आज बंधुआ मजदूर की शक्ल में
बैल की तरह खटकर भी
पूड़ी और दारू की जगह
नहीं पाते भरपेट सूखी रोटी
फिर भी तुम्हारी उपस्थिति
उनके लिए संदिग्ध है ।

सचमुच तुम्हें उनके बीच
नहीं होना चाहिए
क्योंकि
इतने अन्तराल के बाद
तुम्हारे पात्रों की विसंगतियाँ
पड़ गई हैं बौना
उनके पात्रों के आगे

## समाधिस्थ कविता

कुहरे और अन्धेरे की कब्र में
गतिविहीन जीवन की सिकुड़न के साथ
पल रही कविता
और किसी बाज के पंजे में
तड़फड़ाती गौरैये की आतंकित चीख में
बहुत अन्तर है
गोया किसी फुफकारते हुए व्याल
और चुपचाप उकड़ू बैठे
आदमी का तमाशा।

अगर मैं यह मान लूं
कि कविता फूल में होती है
तो यह कविता के आदमी को
बाहर फेंकने की
एक अर्थहीन प्रक्रिया होगी
क्योंकि कविता का अर्थ
सीधे सुगन्ध से है
फूल तो रंग-बिरंगे कागजों में भी
कर सकते हैं सुन्दरता की तरफदारी;

कविता की खास जगह नहीं होती
यह गांव की पगडण्डी पर रह सकती है.
और ठंढ में
सर्दी खाते हुए बदन के लिए
अलाव बनकर
सुगबुगाहट ला सकती है
असभ्यता के अपुष्ट दायरे में समाकर
एक जीवित मनुष्य की तरह
सभ्यता की सतह को छू सकती है,
स्पर्श कर सकती है
पेड़ों की कांटेदार त्वचा
और ढो सकती है
किसी टूटते हुए सांकल की आवाज;

कविता की पहचान का मुद्दा
उसका आदमी है;
कविता और आदमी के बीच
एक संवेदनशील अभिव्यक्ति का फासला है।

रेखा और बिम्ब को चोंच में दबाकर
आदमी जब अपना पंख फड़फड़ाता है
तब कविता उसे उछाल देती है
आकाश की ऊँचाई में।

जमीन में गड़ा हुआ आदमी
धुँआ नही उगल सकता
अंकुरित होती आकांक्षाओं की
हत्या कर सकता है,
इसलिए समाधिस्थ कविता को
कब्र की दीवारें फोड़कर
गाँव की पगडण्डी
और असभ्यता के परिवेश में
( अपुष्ट दायरे में )
आदमी को तलाशता है।

# पुनरावृति महाभारत की

वह फिर आ पहुँचा है
अपनी नई शक्ल में
कन्धों पर बन्दूक और कारतूस लटकाए
शहर को वियावान जंगल बनाने

हर बार इसी तरह
वह अपना खूंखार अभियान चालू करता है
गिद्धों और बाजों पर बन्दूक तानता है
लेकिन गोली दागते समय
स्वतः चालित मशीन के समान
बन्दूक की नाल
मुड़ जाती है
मासूम चिड़ियों की तरफ
और धंस जाती हैं गोलियाँ
उनके कलेजों में;

एक सुनियोजित षड़यंत्र के समान
वह अपना रूप
बहुरूपिये सा बदलता है
खून में सने हुए खंजर को
पश्चाताप के आंसुओं से धोता है
जंग खाए हुए इस्पात को
कुदाल बना देता है
सबकी मुठ्ठी में
जमीन पकड़ा देता है;

मोहक शब्दावली के साथ
छन्द, अलंकारों के छद्मवेश में
उतर जाता है—कविता की घाटी में
फिर टहनियों और फुनगियों की
हत्या का शिनाख्त करता है
और मरी हुई चिड़ियों को
सिर पर उठाये
बिल्ली की तरह दबे पांव
बढ़ जाता है—तख्त ताउस की ओर,
फिर चतुर्दिक स्तब्धता
श्मशान की खामोशी
हरे-भरे पेड़ों पर लटक जाती है
आकाश काला पहाड़ बनकर
दिनारम्भ करता है
फिर वही मुर्दों के जलने की गन्ध
नथुनों में भरने लगती है।

मन नया संग्रहालय बन जाता है
जिसमें होते हैं—
राजनेताओं, धर्म प्रवर्तकों, समाज सुधारकों,
युग स्रष्टाओं के डाक टिकट
आदिम साम्यवाद की शक्ल में
बन्दरनुमा—पीली, नंगी
सभ्यता और संस्कृति की मूर्तियां
बैसाखियों के सहारे खड़े गांवों पर
गोली दागते हुए
अन्धे और नियमहीन इतिहास की तस्वीरें
कबूतरों की पीठ पर पड़ा हुआ
सख्त शीलालेख
भोंकते हुए पालतू कुत्तों की
झुण्ड का काला प्रीन्ट
और शिकार में मारे गये
हरिणों की कतारबद्ध लाशें

सारी सच्चाइयाँ
सपनों पर कील की तरह गड़ जाती हैं
आश्वासनों के महल
बालू के घरौंदे साबित हो जाते हैं;
आंखें टंग जाती हैं इन्द्रधनुष पर
एक बार फिर
पहले की ही तरह
नये कैलेण्डर की तलाश में।

कौन है यह
शब्दों से मछलियाँ पकड़ने वाला
अपनी हथेलियों पर
कविता उगाये हुए
पत्थरों की भाषा का
अमूर्त सेतु तैयार करता हुआ,
तप्त श्वांस लौ से
मील के पत्थरों को पिघलाता हुआ
आदमीयत के गाढ़े खून में सनी
उँगलियों पर
शान्ति के नारे खुदे दास्ताने लपेटे हुए ?

अनीति के उन्मत्त अश्व पर आसीन
तहजीब की सड़क को रौंदता हुआ
वह फिर
शिखण्डी को लेकर
आ गया है हमारे बीच,

शिखण्डी—
जो परतंत्रता का बनकर दलाल
खड़ा है सामने—निरन्तर
हमें निःशस्त्र होने को बाध्य करता हुआ।

# अपने बेटे के नाम वसीयत

घुन लगती संस्कृति
अन्धा बनता इतिहास
भूख से बिलबिलाती फसलें
प्यास से छटपटाती नदियाँ
डर से ठिठकी हुई जनसंख्या
रक्त मिश्रित बालू में धँसा शान्ति का टाइम कैप्सूल
दमे की तरह खाँसती सदी
बीच चौराहे पर गिरा लहूलुहान सच
सूरज की रोशनी में—चिंघाड़ता हुआ अन्धकार
ठंड से जमा हुआ संघर्ष
और गुस्से से तमतमाए हुए मेरे हाथ
ये सभी चीजें
वसीयत है मेरे बेटे के नाम ।

# युगबोध

क्या पढ़ी है तुमने
पत्थर तोड़ते, खुरदरे, घठाये
संवेदनहीन हाथों की
आड़ी तिरछी, टेढ़ी रेखाओं की क्रूर लिपि ?

क्या सुनी है तुमने
आदमीयत की तहज़ीब तले
बदबूदार पसीने में तरबतर
सांस भर हवा तलाशने की भाषा ?

क्या देखा है तुमने
अस्थिनुमा देह पर
पीली नसों का मानचित्र
और भाग्य के चौराहे पर बैठा
पीढ़ी दर पीढ़ी
अवहेलनाओं, अभावों, कड़ुवाहटों का जलता रेगिस्तान
जहां चुटकी भर हरीतिमा की कीमत
जीवन पर्यन्त बेलगाम श्रम साधना है ?

यह त्रासदी नहीं
एक सुनियोजित षड़यन्त्र है,
जिसके खूंरेजी पंजों में दबा
लहूलुहान इतिहास
उठ रहा है-फिर से।

# मुन्तज़िर

बर्फीली पहाड़ी पर
खड़ा है वह
सर्द हवाओं के पूरे फैलाव के बीच
जैसे अपने थैले में
जहर बटोरता हुआ कोई सर्प
या इंधन की प्रतीक्षा करता कोई इंजन !
चाहे जो हो
लेकिन नहीं माना जा सकता
वह महज एक आदमी ।

डूब गये है बर्फ में
उसके टखने
मस्तिष्क में है
एक डोलती हुई तस्वीर
धक् धक् करते चमड़े के मशीन के पास हैं
चोखता हुआ जुलूस
उसके भीतर धधक रही है
आदमी को गलाने वाली एक भट्ठी
जलती टेस आँखें
ज्वालामुखी की बटोरतीं लपटें
देख रही हैं—
दूर पहाड़ियों पर
लाल किरनों के फैले हुए पंख
नीचे समुद्र की चमचमाती रोशनी
जहाँ उतर आया है दिन........

सियासत के विषधरों ने
खोखली हथेली पर
स्वार्थ के टुकड़े फेंककर
रूमानी जिन्दगी के छलावे एहसास से
बर्बरता की बदबूदार आग में
झुलसे शरीर को
कभी कभार सहलाया है
और फिर लपेट कर
कामुक फनों में
फेंक दिया है श्मशानी अन्धेरे में
कभी लपेट कर हमें अखबार में
चुन-चुन कर खिलाया है शब्दों को,
लेकिन क्या शब्दों के इस्तेमाल से
बाघ और भेड़िए डरते हैं ?
क्या आवाज की एक चोट से
जंगली सूअर भाग जाते हैं ?

कवच ओढ़े
इस अन्तहीन कहानी को
अपने भीतर दफन कर दो
और राजमार्गों से आते हुए
आश्वासनों को लेकर साथ
लड़ लेने दो एक बार फिर
भूख और पराजय से।

# मुन्तज़िर

बर्फीली पहाड़ी पर
खड़ा है वह
सर्द हवाओं के पूरे फैलाव के बीच'
जैसे अपने थैले में
जहर बटोरता हुआ कोई सर्प
या इंधन की प्रतीक्षा करता कोई इंजन !'
चाहे जो हो
लेकिन नहीं माना जा सकता
वह महज एक आदमी ।

डूब गये हैं बर्फ में
उसके टखने
मस्तिष्क में है
एक डोलती हुई तस्वीर
धक् धक् करते चमड़े के मशीन के पास हैं
चीखता हुआ जुलूस
उसके भीतर धधक रही है
आदमी को गलाने वाली एक भट्ठी
जलती टेस आँखें
ज्वालामुखी की बटोरतीं लपटें
देख रही हैं—
दूर पहाड़ियों पर
लाल किरनों के फैले हुए पंख
नीचे समुद्र की चमचमाती रोशनी
जहाँ उतर आया है दिन.........

कितनी अजीब बात है
तूफान पूरे वेग से
उड़ा रहा है बर्फ की सफेदी
गला रहा है उसे
समुद्र के तल पर डालकर
और वह
खड़ा है, वैसे ही-जड़वत
बांधकर अपने हाथों को;
फट गई है नसें ठंढ से
सन गई हैं हथेलियाँ खून से
जोरों की प्यास है उसे
बर्फ तो पिया नहीं जाता
न ही समुद्र का पानी
जबतक सूरज उसकी पहाड़ी पर आये नहीं
तबतक नही बुझे उसकी प्यास
तूफान गिरा देगा
बर्फ ढँक देगा उसे
उसके भीतर की ज्वालामुखी
तब दब जायेगी।

लेकिन सूरज की गरमी छितराकर
जब पहुँचेगी उस तक
तब पहाड़ी थर्रा उठेगी
एक भारी विस्फोट से
बर्फ तापक्रम की ऊँचाई पर पहुँच कर
कट कट कर मिल जायेगा समुद्र में
उसके अन्तर की तस्वीर को
मिल जायेगी एक स्थिर ऊँचाई
जुलूस की चिल्लाहट
रोटी की गरमी पाकर
बदल जायेगी चुप्पी में
तब उसके पास भी
उतर आयेगा दिन
सुनहरी किरनों के पंख पर।

# भयमुक्ति

तुम्हारे शापों से
अब मैं नहीं डरता
जरा भी विचलित नहीं होता
तुम्हारे जादुई चमत्कारों से,
याद है मुझे
तुम्हारे शापों के डर से
सीढ़ियों पर रखे पांव हटा लेता था मैं,
बाँध लेता था आँखों पर पट्टी,
पेट में दारू की बोतल उड़ेल
सो रहता था तानकर चादर
किन्तु अब मैं—एकदम हूँ भयमुक्त

घावों से छलनी मेरे शरीर को
कोढ़ी बना देने के शाप से
नही डरा सकते तुम
दाने दाने को मुहताज मेरे कुटुम्ब को
विपन्नता का शाप देकर
नही कर सकते भयभीत
सहस्राब्दियों से बँधे हाथों को
गुलामी का शाप देकर
लकवा ग्रस्त नही कर सकते अब।

तुम्हारे जादुई चमत्कारों का भेदमर्दन
बखूबी कर सकता हूँ""मैं—अब
इनकी बुनियाद तुम्हारा मन्त्रोचार नही,
मेरी खण्डित शक्ति की दुर्बुद्धि है
इनकी सफलता तुम्हारी भगिमाओं में नहीं
मेरे दिशाहीन विचारों की क्लीवता में है।

अपने भीतर
अब मैं
ढूंढ़ सकता हूं अपने को
और तुम्हारे शब्दों की किये बिना परवाह
नदी बनकर
उतर सकता हूं समुद्र में।

# वहुधन्धी

उसके पांवों तले दबी है
हजार हाथों की फसलें
मुट्ठी में बन्द है
फर्जी लाइसेन्स की शक्ल में
कामधेनु गाय
जेब उगलती रहती है
भानुमती के पिटारे की नाई
खाद और चीनी के बोरे,
सीमेण्ट की परमिट
चूतरों के नीचे है
दफ्तर की रोआवदार कुर्सी,
जो रिश्वतखोरी के विरुद्ध कारंवाई हेतु
माँगती है—एक मुश्त रिश्वत
रोम-रोम में लटका हुआ
कोई न कोई धन्धा है
अधिक काम-कम बातें
उसका प्रोपगण्डा है।

गोया व्यवसाय के विस्तर पर
नौकरी का लिहाफ ओढ़े
वह सिक्कों की भाग छान रहा हो।

भूख के विरुद्ध खड़े जुलूस में
शरीक हो वह
सरकार, विपक्ष, व्यवस्था पर एक साथ
दनादन गालियों की बौछार करता है
और पूरे जुलूस को
घुन की तरह चाट जाता है।

मेरी माँ, बीवी और सगे सम्बन्धी
मेरी काहिल ईमानदारी को
कोसते और लताड़ते हुए
मुग्ध हैं उस पर
बहुत....।

## शान्ति की समझ तक

वह एक
सिर्फ एक ही अकेला बाजीगर है
जिसकी कलाबाजियाँ
बना देती हैं तुम्हें पालतू कुत्ता,

नस्लवादी जमीन पर छलांगें मार
आतंकवादी रस्सी को छू लेना
उसके बायें हाथ का खेल होता है
प्यार और चुम्बन को
वह साबुत निगल कर
उगलने लगता है
नफरत के बड़े-बड़े कठोर लोह-गोले
चमत्कृत कर देता है निकाल कर
लपलपाती जीभ से दहकते शोले
नीले आसमान को
काले पहाड़ सा खड़ा कर देता है
सिर के ऊपर
नीचे होती है
कातर आँखों से
आसमान की भयंकरता नापती
थर-थर काँपती जनसंख्या,

वही एक अकेला बाजीगर
बन जाता है
सरहदी जंग का सौदागर
जगह-जगह
भूख और कत्ल की महामारी फैलाता
तुम्हारे भीतर यह तथ्य घुसेड़ता
कि हथियारों की खरीद-फरोख्त ही
महामारियों का अमोघ उपचार है,
उसकी निरंकुश मुट्ठी में
बन्द होती हैं—लोकतंत्री चीत्कारें
और थैलियों में छुपी होती है
भयाक्रांत जर्जर सरकारें;

वही एक अकेला बाजीगर
कभी सफेद कुर्ता पहन
हाथ जोड़ नमस्कार करता है
और ज्योंही जवाब में
जुड़ते हैं तुम्हारे हाथ
वह तुम पर आतंक की बौछार करता है
फिर तुम्हें पता नहीं होता
कि तुम अपने आप को ही
नोच नोच कर खा रहे हो।

तुम्हीं में से वह किसी को चुनता है
तुम्हारी मिट्टी की भाषा
वह अपनी जुबान में गढ़ता है
फिर चिकित्सा का ढोल पीटते हुए
भर देता है तुम्हारे भीतर
मजहबी उन्माद के किटाणु
और खंडित कर डालता है
एक ही साथ
तुम्हे और तुम्हारी धरती को।

वही एक अकेला बाजीगर
बजा रहा होता है चैन की वंशी;

तुम देखते रहते हो
इसी तरह हतप्रभ–उसकी कलाबाजियाँ
तालियाँ पीट पीटकर
देते रहते हो उसे शाबासियाँ
तबतक
जबतक
तुम्हारी चेतना की फाँक से
कोई रोशनी झाँककर कहती नहीं
कि युद्ध केवल सवाल उगलता है।

## आईना

आओ
हम धरतीवासी
चाँद में अपना प्रतिबिम्ब देखें
और अपने मुँह पर लगे
काले धब्बे को
प्रशान्त महासागर में धो डालें !

# विकल्प

रेल की छत पर
यात्रा कर रहे यात्री
पुल से टकराकर मर गये
पलटू, झगरु, जुमराती
इस दुर्घटना से डर गये
कान उमेठ
गाल पर चपत जमा
सबने खाई कसम
अब कभी भी छत पर
नहीं करेंगे हम सफर।

महीना भर बाद
चिमनी का भट्ठा बन्द हो गया
हफ्ते भर की मजदूरी
मालिक के घाटे के परवान चढ़ गई
जागते जागते
फिर सबका भाग्य सो गया
बेरोजगारी में सबने
कई कई दिनों तक
पानी को खाया
औरतों ने बच्चों को दूध की जगह
खून पिलाया
और टूटते संकल्पों को
ढाँढ़स बँधाया
पर जब भूख का संक्रामक रोग
सीमातिक्रमण कर गया
तो आखिरकार मन का
संकल्प ढह गया।

सत्तू पिसान की गठरी बाँध
चल पड़े परदेस
बतियाते हुए कि—
घुल घुल कर मरने से
अच्छा है मर जाना
रेल की छत पर
क्योंकि
मरणोपरान्त कम से कम
कफन दफन का पहाड़ सा खर्च तो
करती है सरकार वहन।

# बंधुआ मजदूर के बेटे का अनुनय

मत पीटो मेरे बाप को
बाबू मत पीटो
बैलों के सानी गोतने में
जरा सी हुई देर के लिए
मत पीटो मेरे बाप को;
मेरा बाप कामचोर नहीं
उसका कसूर कुछ नहीं
कसूर है उसकी बीमारी का
जिसने तीन दिनों से
कर रखा है उसे पस्त
सांस नहीं लेने देते
जोड़ों का दर्द और छाती का दमा
अब नहीं हो पाता उससे
पहले की तरह
हड्डीतोड़ काम
अब थकान नहीं मिटा पाता
केवल चार घंटे का आराम।

आम की गुठली बन गया है
चालीस साल में ही मेरा बाप;
छुट्टी दे दो न उसे बाबू
तैयार हूँ मैं
उसकी जगह खटने को
ले लो सौगन्ध मुझसे
अपने बाप से कम काम नहीं करूँगा
कोई कम नहीं होती
दस साल की उमर।

# होली का जश्न

रोज होलिका जलती है
इस गांव के गलियारे में,
रोज उठती है चिरायंध
लाशों के जलने की,
रोज तनती हैं संगीनें
पिचकारी की तरह
और लाल
गाढ़े लाल रंगों में
सराबोर हो उठते हैं
सूखे पीले शरीर;
रोज कुत्ते, बिल्लियाँ, सियार
आपस में बिना लड़े
लट्टू हो जाते हैं गोश्त पर
डूब जाते हैं लाल रक्त में
और नाचते हुए
मनाते हैं जश्न होली का
रोज।

# मेरा विकास तुम्हारा भय है

मेरा स्वप्न तुम्हारी जिन्दगी है
मेरी जिन्दगी तुम्हारा जूठन है।

मेरा अधनंगापन तुम्हारी संस्कृति है
मेरी संस्कृति तुम्हारा मनोरंजन है।

मेरा सत्य तुम्हारा सन्देह है
मेरा सन्देह तुम्हारी सुरक्षा है।

मेरा पौरुष तुम्हारा इतिहास है
मेरा इतिहास तुम्हारा यश है।

मेरा हाथ तुम्हारा पेट है
मेरा पेट तुम्हारी सम्पत्ति है।

मेरा श्रम तुम्हारी पूँजी है
मेरी पूँजी तुम्हारा ऐश्वर्य है।

मेरी गतिशीलता तुम्हारा विकास है:
मेरा विकास तुम्हारा भय है।

# लोकयुद्ध

समय
अपने फैलाव की हदों में
सूली पर लटका हुआ
अन्तिम सांस तक
तोपों, संगीनों और बमों के लौह-दुर्ग से
निर्णायक युद्ध के लिए कृतसंकल्प है,
देखो—
उसकी आंखों में उभरी हुई हैं
बारूद की लाल लपटों की लपलपाती आकृतियां
उसकी चट्टानी छातियां
टैंकों, स्टेनगनों को गोलियां
कर रही हैं चुरमुरा
जंगी विमानों को लील जाने की मुद्रा में
खुला हुआ है उसका मुंह
उसने अपनी बन्द मुट्ठियों में
छिपा रखा है
दुश्मनों के पराजय का नक्शा
होठों में भावी विजय की मुस्कान दबाए
वह खड़ा है—भयहीन, निश्चल
वह अतीत में असंख्य युद्धों के
भयावनेपन को झेल चुका है,
तजुर्बों की इस्पाती चादर ओढ़े
बमवर्षक विमानों की भर्राहट
विमान वेधक तोपों की गड़गड़ाहट
मशीनगनों की घड़घड़ाहट को
अपनी चुप्पी से हरा रहा है।

वह अभी उन सहस्त्र हाथों को
जोड़ रहा है एक में
जो दिन रात पत्थर काटते हैं
कारखाने की भट्ठियों में
झोंककर अपना जिस्म
लोहा गलाते हैं
जमीन से रगड़ रगड़ कर अपनी ठठरियाँ
हीरे-मोतियाँ निकालते हैं
और अपनी अधमरी लाशें उठाये
सस्ती रोटी की दुकानों के सामने
कतार में लगकर हाथ फैलाते हैं,
इन हाथों की अपराजेय शक्ति
वह अभी
भर रहा है अपने भीतर
इन्हीं हाथों से उसने कई बार
आसमान के चिथड़े किए हैं
धरती पर भूकम्प उतारा है
और खौफ, दर्द को
खदेड़ा है सरहद के पार;

-क्या तुम इस बर्बर लड़ाई की
विपाक्त गन्ध नहीं सूंघ पा रहे हो
तो एक क्षण के लिए
झांक लो
अपनी पत्नी की पथहीन आंखों में
उसकी सूखी लटकी छातियों पर
टकटकी लगाए
अपने असहाय बच्चे को देख लो
जवानी की चौखट को पार करती
क्वांरी बहन की
करियाई हुई मांग को सूंघ लो-
बेतरह खांसते और गाली बकते हुए
अपने बाप के हिलते कलेजे को छू लो
आसपास खड़ी
भूखी लाशों की भीड़ से निकल रहे
जहरीले धुएं को आंखों में भर लो
तब युद्ध की भयानक लपटें
तुम्हारे भीतर के खोखलेपन को भर देंगी
तुम उठोगे
और उन हाथों में
जोड़ दोगे अपना हाथ
समय की बेड़ियां काटकर
उसे सूली से उतार दोगे
और उसके साथ
अपने अमूल्य मूल्यों की लड़ाई में
हर दिशा से
-बख्तरबन्द गाड़ियों में सवार हो
दक्षिण दिशा पर
-समुद्री तूफान की तरह टूट पड़ोगे।

# चुनौती

तुम्हारे पास बन्दूक और मशीनगन हैं
भारी टैंक और शक्तिशाली बम हैं
फिर भी तुम्हारी हार निश्चित है
क्योंकि साहस
मेरे पास है,

तुम्हारे पास धन और ऐश्वर्य हैं
खेत और कारखाने हैं
फिर भी तुम्हारा पतन निश्चित है
क्योंकि श्रम
मेरे पास है,

तुम्हारे पास शासन और सत्ता है
चुनाव में आए वोटों की बहुलता है
फिर भी तुम्हारा गिरना निश्चित है
क्योंकि समाज और संगठन
मेरे पास है,

तुम्हारे पास फौजी टुकड़ियाँ हैं
ऊँचे ओहदे और कुर्सियाँ हैं
फिर भी तुम्हारा ह्रास निश्चित है
क्योंकि अनुशासन और त्याग
मेरे पास है,

तुम्हारे पास जेल और फाँसी है
हत्या की योजना है
फिर भी तुम्हारी मौत निश्चित है
क्योंकि शहादत
मेरे पास है,

तुम्हारे पास लूट और दंगें हैं
विध्वंसकारी युद्ध के हथकण्डें हैं
फिर भी तुम्हारा विनाश निश्चित है
क्योंकि सृजन
मेरे पास है,

तुम्हारे पास धूर्तता और चालाकी है
फूट डालने की कूटनीति है
फिर भी तुम्हारी विफलता निश्चित है
क्योंकि चेतना और जागृति
मेरे पास है,

तुम्हारे पास धौंस और गालियाँ हैं
पाशविक निर्लज्जताएँ हैं
फिर भी तुम्हारा क्षय निश्चित है
क्योंकि संस्कृति और कला
मेरे पास है,

तुम्हारे पास शोषण और अत्याचार है
अन्याय और अनाचार है
फिर भी तुम्हारा अन्त निश्चित है
क्योंकि मुक्ति का विधान
मेरे पास है।



**कुमार नयन**

जन्म— विहार में बक्सर जिलान्तर्गत डुमराँव नगर, बहुचर्चित स्वतंत्रता सेनानी स्व० केसरी के घर।

रचनाएँ—हिन्दी, उर्दू तथा भोजपुरी में गीत, गजल ५१ कविताएँ स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आकाशवाणी से तीनों भाषाओं में प्रसारित।

शीघ्र प्रकाश्य कृति—"आग बरसाते हैं शजर"
( गजल संग्रह )

सम्प्रति— भोज थियेटर ( कला मंच ) से सम्बद्ध। स्वतंत्र लेखन।

पता— हनुमान फाटक
पो० मु०–बक्सर
जिला–बक्सर ( बिहार )